THE TIMES OF INDIA

Date:20-03-23

Pax Sinica?

Saudi-Iran truce shows Beijing's strategic ambition. But China's faced big diplomatic failures too.

TOI Editorials

The recent truce between Iran and Saudi Arabia with both nations agreeing to re-establish diplomatic ties certainly took many by surprise. Particularly because it was mediated by China, a country hitherto not known for its peace-making skills. But it is a sign of Beijing's growing ambitions that it was willing to get involved in the tricky Middle East with its multiple sectarian and political fault lines. Over the past decade, Iran and Saudi Arabia have engaged in multiple proxy conflicts in the wake of the Arab Spring upheaval to increase their strategic footprint in the region. The most brutal of these has been the conflict in Yemen where Iran-backed Houthis have frustrated the Saudi-UAE military intervention in that country.

But hit with crippling sanctions, which followed when Trump unilaterally reneged on the Iran nuclear deal in 2018, and now facing domestic anti-hijab protests, Tehran needed strategic breathing space. While Riyadh's testy relationship with the Biden administration, especially over Ukraine, gave it reason to spread out its strategic bets. China simply took advantage of this situation to bring the two Middle East rivals together and project itself as an alternative dealmaker to the US. Of course, this serves Beijing's commercial interests as it sources more than 40% of its energy needs from the Gulf.

However, whether the Iran-Saudi deal survives and China's new role sustains remain to be seen. For, China has now decided to strongly support Russia over Ukraine – much different from India's nuanced position – and rewrite the international rules-based order. Plus, its debt-trap diplomacy has affected nations as diverse as Sri Lanka and Uganda. Even the China-Pakistan Economic Corridor has run into serious problems. This means there are limits to Beijing's strategic outreach. And India – which is locked in a border standoff with China – should take this opportunity to step up its own international strategic outreach in tandem with countries like the US and Japan. The I2U2 platform in the Middle East and initiatives to strengthen defence ties with African nations must be bolstered. New Delhi must prepare for long-term strategic powerplay.

THE ECONOMIC TIMES

Date:20-03-23

It Pays to Fix Gender Wage Disparity

MNREGA can provide an effective model.

ET Editorials

Wage disparity between men and women has widened over the past decade, with the gap opening up further at higher wage levels. This is a key takeaway from a report by the National Statistics Office (NSO) released this week on gender parity across Indian states. The income effect is a leading measurable metric in wage parity that has been affected by the larger disruption of female labour participation on account of migration from towns to villages following Covid lockdowns. Other contributory factors that keep women's pay lower than that of men include inability to work irregular hours, lack of mobility to reach job sites, and discontinuity of experience owing to family responsibilities. These apart, there is a large unmeasurable component of gender pay disparity that is accounted for by plain and simple discrimination.

Some of these factors are addressed by the Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MNREGA) scheme that acted as a ballast during the pandemic's reverse migration. Enhanced budgetary allocation to the scheme since 2020 absorbed some shock of the steep fall in women's employment. MNREGA is an equal work, equal pay programme that provides signals to market wages for men and women. The work is done during the day and does not involve overtime, which otherwise tilts the balance towards men's wages. The work is also done locally. So, lack of women's personal mobility does not inhibit their earning capacity. Finally, MNREGA does not discriminate against women for returning to the workforce after a gap.

The rural job scheme has served its purpose during an economic crisis and has to be wound down as normalcy returns to the labour market. This requires more intervention by states to fix the damage to women's workforce participation. The decline had set in before the pandemic and accelerated with its onset. States where the gender pay gap is accelerating need to devise policy responses to discourage the inequity. The Centre, on its part, could be more cautious in dialling back MNREGA allocations.

दैनिक जागरण

Date:20-03-23

वैश्विक डिजिटल क्रांति का अग्रदूत बना भारत

विवेक देवराय और आदित्य सिन्हा, (देवराय प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद के अध्यक्ष और सिन्हा प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद में अपर निजी सचिव-अनुसंधान हैं)

बुनियादी ढांचे को पारंपरिक रूप से सड़कों, पुलों और इमारतों आदि जैसी भौतिक अवसंरचनाओं के साथ जोड़कर देखा जाता है। हजारों वर्षों से बुनियादी ढांचे का यह विचार मानव समाज के मूल में रहा है। इस दौरान सभ्यताओं ने अपने विकास के लिए नहरों और सड़कों से लेकर तमाम अन्य लोक निर्माण किए। हालांकि, हाल के वर्षों में बुनियादी ढांचे की संकल्पना भौतिक अवसंरचनाओं से कहीं आगे बढ़कर डिजिटल पब्लिक इन्फ्रास्ट्रक्चर और डिजिटल पब्लिक गुड्स तक चली गई है। डिजिटल पब्लिक इन्फ्रास्ट्रक्चर यानी डीपीआइ से आशय उन तकनीकी नवाचारों से है, जिनके माध्यम से समाज के एक बड़े वर्ग तक प्रमुख निजी एवं सार्वजनिक सेवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित हुई है। इसमें डिजिटल सत्यापन एवं पहचान, नागरिक पंजीयन, सुरक्षित डिजिटल लेनदेन और मुद्रा हस्तांतरण से लेकर निर्बाध डाटा विनिमय और सक्षम सूचना तंत्र भी शामिल हैं। भारत में 2009 से आधार के सूत्रपात के साथ ही इसकी जड़ें गहरी होती गईं। आधार पर आधारित डिजिलाकर और यूपीआइ जैसी सेवाएं अस्तित्व में आईं। डीपीआइ न केवल नागरिकों तक सेवाएं पहुंचाने में सरकारों को सक्षम बनाता है, बल्कि इससे पारदर्शिता और जवाबदेही भी बढ़ती है।

जलवायु परिवर्तन और प्रभावी पब्लिक फाइनेंस जैसे अहम वैश्विक मुद्दों से निपटने में अंतरराष्ट्रीय समुदाय भी डीपीआइ की अहम भूमिका को समझता है। डीपीआइ के इस महत्व को रेखांकित करने में भारत विशेष भूमिका निभा रहा है। भारत ने डीपीआइ की मदद से ही अपनी 80 प्रतिशत आबादी के वित्तीय समावेशन में सफलता प्राप्त की है। अन्यथा इसमें करीब 46 साल लग जाते। वास्तव में आधार और इंडिया स्टैक की जुगलबंदी भारत के लिए व्यापक रूप से लाभदायक सिद्ध हुई है। इसने वित्तीय लेनदेन के स्वरूप से लेकर पीएफ निकासी के साथ-साथ पासपोर्ट एवं ड्राइविंग लाइसेंस और भूमि रिकार्ड सत्यापन जैसी कई सरकारी सेवाओं को सहज बना दिया है। अपनी इन्हीं क्षमताओं के चलते भारत विश्व में आकार ले रही इस डिजिटल क्रांति के अग्रदूत की भूमिका में दिख रहा है।

आधार से तो अधिकांश लोग परिचित हैं। जहां तक इंडिया स्टैक की बात है तो यह एक स्वदेशी डिजिटल असेट्स का नवाचारी संग्रह है। ई-गवर्नेंस और लोक सेवाओं में इसकी उपयोगिता सिद्ध हुई है। इस पर यूपीआइ, को-विन, आरोग्य सेतु और डिजिलाकर सहित तमाम अन्य आकर्षक एप्लिकेशन उपलब्ध हैं। इन्होंने हमारे जीवन, कामकाज और एक दूसरे से संवाद को सुगम बनाया है। इंडिया स्टैक को वैश्विक स्तर पर स्वीकार्यता मिल रही है। श्रीलंका, मोरक्को, फिलीपींस, गिनी, इथियोपिया और टोगो ने इंडिया स्टैक को सफलतापूर्वक लागू किया है। ट्युनीशिया, समोआ, युगांडा और नाइजीरिया जैसे कई अन्य देशों ने भी इसमें रुचि दिखाई है। इसके पीछे भारतीय माडल की उन्हीं संभावनाओं का असर है, जिनमें कल्याणकारी योजनाओं के मोर्चे पर क्रांतिकारी परिणाम प्रदान करने की क्षमताएं हैं। अब अनिवासी भारतीय यानी एनआरआइ भी यूपीआइ के जरिये वित्तीय लेनदेन कर सकते हैं। इसके लिए उनका फोन नंबर उनके स्थानीय बैंक के साथ पंजीकृत होना चाहिए। यह सेवा सिंगापुर, आस्ट्रेलिया, कनाडा, ओमान, कतर, अमेरिका, सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात और ब्रिटेन में शुरू भी हो गई है।

डिजिटल पब्लिक गुड्स का मुद्दा आखिर इतना महत्वपूर्ण क्यों है? असल में, इसने देश में सामाजिक कल्याणकारी कार्यक्रमों का जबरदस्त कायाकल्प किया है। डिजिलाकर जैसी सरकारी सेवाओं तक आसान पहुंच से कतार में लगे बिना ही स्कूल और कालेज के अंकपत्र तुरंत प्राप्त किए जा सकते हैं। इससे शासन-प्रशासन की सक्षमता बढ़ने के साथ ही सरकारी प्रक्रियाएं सुसंगत हुई हैं। प्रशासनिक लागत भी घटी है। जनधन-आधार-मोबाइल यानी जैम की त्रिशक्ति ने सुपात्र लाभार्थियों को शत प्रतिशत प्रत्यक्ष नकदी अंतरण का लाभ दिया है। इसमें कई सामान्य काम आटोमेटिक हो गए हैं। कागजी कार्रवाई की जरूरत घटी है, तो सरकारी परिचालन बेहतर हुआ है। डीपीआइ की मेहरबानी से नागरिकों तक सूचनाएं सहजता से उपलब्ध हो रही हैं, जिससे शासन में पारदर्शिता बढ़ी है। सरकारी व्यय, सार्वजनिक नीतियों और

विधायी कामकाज पर इसकी छाप दिखती है, जिनमें जनभागीदारी बढ़ने के साथ व्यापक जवाबदेही की राह खुली है। सुगम वित्तीय लेनदेन से जीवन की गुणवत्ता सुधरी है। यूपीआइ से सेकेंडों में वित्तीय लेनदेन संभव हुआ है। नकदी जमा करने या निकालने के लिए बैंक में जाकर कागजी कामकाज और लंबी कतारों में खड़े होने की आवश्यकता नहीं रह गई है। वित्त वर्ष 2022 में ही 8,840 करोड़ वित्तीय डिजिटल लेनदेन में यूपीआइ की 52 प्रतिशत हिस्सेदारी थी, जिसमें कुल 126 लाख करोड़ रुपये के लेनदेन हुए। अथाह डाटा के प्रभावी विश्लेषण से डीपीआइ डाटा प्रबंधन में भी बहुत सहायक सिद्ध हुआ है। इससे बेहतर निर्णय प्रक्रिया सुनिश्चित होने के साथ ही साक्ष्य आधारित नीति-निर्माण संभव हुआ है, जिसने सामाजिक कल्याणकारी कार्यक्रमों की प्रभात्पोदकता में वृद्धि की है।

डीपीआइ में सामाजिक कल्याण की दशा-दिशा सुधारने के साथ ही आर्थिक वृद्धि को गति देने की भी भरपूर क्षमताएं हैं। वित्त मंत्रालय में मुख्य आर्थिक सलाहकार के अनुसार डीपीआइ क्रियान्वयन जीडीपी वृद्धि को एक प्रतिशत तक बढ़ा सकता है। स्पष्ट है कि डीपीआइ किसी राष्ट्र की आर्थिक स्थिति सशक्त बनाने के साथ ही उसके समग्र आर्थिक विकास को गति देने में सक्षम है। डीपीआइ और इंडिया स्टैक ने भारत में व्यक्तियों, बाजारों और सरकारों के कामकाज के तौर-तरीकों को नए तेवर दिए हैं। यही कारण है कि विश्व भर में उसकी स्वीकार्यता में निरंतर विस्तार हो रहा है। इससे एक सुखद भविष्य के संकेत दिखते हैं। ऐसा परिदृश्य जो कहीं अधिक सक्षम, पारदर्शी और समतापूर्ण समाज से परिपूर्ण होगा। उसमें डिजिटल पब्लिक इन्फ्रास्ट्रक्चर हमारे दैनिक जीवन का एक अभिन्न अंग बन जाएगा।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:20-03-23

सांठगांठ के दौर में भी वैश्विक ब्रांड का अभाव

शेखर गुप्ता, ('दिप्रिंट' के एडिटर-इन-चीफ तथा चेयरमैन हैं)

अदाणी विवाद ने हमारा ध्यान देश की राजनीतिक अर्थव्यवस्था के कई संबद्ध पहलुओं की ओर खींचा है। इनमें से पहला सबसे अहम और तात्कालिक है: विपक्ष का सांठगांठ का आरोप। जब हम इसके विस्तार में जाते हैं तो यह एक विस्तृत थीम बन जाती है जिसमें कारोबारी जगत की शीर्ष चार या पांच कंपनियां शामिल हैं।

आप इस सूची में अंबानी, टाटा, बिड़ला और वेदांत को शामिल कर सकते हैं। इन सभी को कारोबारी समूह कहा जा सकता है। इन सभी का दखल विविध कारोबारों में है। हालांकि यह कोई निर्णायक या व्यापक सूची नहीं है।

उदाहरण के लिए टाटा को ऐसा समूह कहा जाता है जो नमक से लेकर सॉफ्टवेयर तक सब बनाता है। वह वाहन भी बनाता है, सैन्य विमान भी, उसके पास एक बड़ा विमानन कारोबार भी है और वह स्टील भी बनाता है।

मुकेश अंबानी की रिलायंस इंडस्ट्रीज के कारोबार का दायरा भी बहुत व्यापक है। वह रिफाइनिंग से लेकर दूरसंचार तक और खुदरा कारोबार से लेकर बायोसाइंस शोध और मीडिया तक तमाम कारोबारों में है।

आदित्य बिड़ला समूह की रुचि धातु कारोबार खासकर एल्युमीनियम में है। इसके साथ ही वह दूरसंचार, सीमेंट और धागों समेत कई कारोबारों में है। वेदांत समूह ज्यादातर धातु कारोबार में है। इसके अलावा वह तेल एवं गैस उत्पादन में भी शामिल है।

इन सभी में तीन बातें साझा हैं। एक, ये सभी पारिवारिक नियंत्रण वाली या विरासती कंपनियां हैं। रिलायंस और बिड़ला के कारोबारी साम्राज्य की स्थापना पिछली पीढ़ियों ने की थी। वेदांत और अंबानी पहली पीढ़ी के संस्थापक रहे हैं जो अपने कारोबारों पर सीधा नियंत्रण रखते हैं। परिवार के सदस्यों के अहम कारोबार पर नियंत्रण के मामले में इनमें फर्क हो सकता है। अदाणी समूह में जहां यह बहुत अधिक है, वहीं टाटा में बेहद कम। दूसरी बात, इन सभी का ज्यादातर कारोबार उन क्षेत्रों में है जहां सरकार की भूमिका निर्णायक है। इन क्षेत्रों में नियमन बहुत अधिक है और अक्सर (खासकर अदाणी के मामले में) एकाधिकार की स्थिति है। मुंबई हवाई अड्डे और बिजली वितरण के बारे में सोचिए या मुंद्रा बंदरगाह अथवा बिजली खरीद समझौतों वाले बड़े संयंत्रों के बारे में। यही बात रिफाइनिंग और दूरसंचार, खनन और तेल क्षेत्र की रियायतों पर भी लागू होती है। इन सभी में सरकार से सीधा और व्यापक संवाद आवश्यक है।

तीसरी और सबसे अहम बात, उनमें से किसी के पास वैश्विक भारतीय ब्रांड नहीं है। मैं समझता हूं कि टाटा समूह इसका विरोध करेगा क्योंकि उनके पास ताज होटल हैं और अब एयर इंडिया भी वापस उनके पास है। मैं थोड़ी विनम्रता से कहूंगा कि ताज अभी भी ऐसा होटल ब्रांड नहीं है जिसे दुनिया चकित होकर देखे। शायद इसलिए कि वह कई श्रेणियों में काम करता है। उसके होटलों में सुपर लक्जरी होटलों से लेकर सामान्य श्रेणी के जिंजर होटल तक शामिल हैं। एयर इंडिया तो सरकार के रवैये के कारण दशकों पहले मर चुकी थी और उसका पुराना वैभव वापस दिलाने में अभी समय लगेगा।

गौतम अदाणी की इस बात के लिए काफी आलोचना हुई कि वह नरेंद्र मोदी की सरकार के काफी करीबी हैं। खासकर इसलिए कि उनके प्रमुख कारोबारों के चलने के लिए सरकार की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है। वह देश के तटीय इलाकों में बंदरगाहों का संचालन कर रहे हैं जिनका नियमन सरकार के हाथों में है, विदेशों में बंदरगाह खरीदना बिना सरकार की मदद के संभव नहीं। सवाल यह नहीं है कि यह अच्छी बात है या बुरी। इसे अक्सर सांठगांठ कहा जा सकता है।

इसी प्रकार जैसा कि द इकॉनमिस्ट ने अपने हालिया अंक में लिखा कि भारत में हवाई अड्डों, राजमार्गों, रेलवे, सुरंगों, मेट्रो समेत ढेर सारे निर्माण हो रहे हैं। ऐसे भारी भरकम बुनियादी ढांचे को तैयार करने के लिए काफी पैसे वाली कंपनियों की जरूरत होगी।

क्या आप इसके लिए बेकटेल जैसी दिग्गज वैश्विक कंपनियों का इंतजार करेंगे या चाहेंगे कि देश के कारोबारी समूह ऐसा करें? बिना सरकार का साथ मिले कोई ऐसा नहीं कर सकता है इसलिए यह कोई मुद्दा ही नहीं है। ऐसे में बहस इस विषय पर होनी चाहिए कि क्या बेकटेल समेत सभी के लिए समान परिस्थितियां हैं।

सरकार और कॉर्पोरेट की 'साझेदारी' (आप चाहें तो इसे गठजोड़ कह लें) की शुरुआत मोदी सरकार के आगमन से नहीं हुई। अदाणी समूह के कई बड़े लाइसेंस और पर्यावरण मंजूरियां संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (संप्रग) सरकार के कार्यकाल में मिली थी। यकीनन वे जोर देंगे कि ये मंजूरियां सही सवाल पूछने और सभी प्रतिस्पर्धियों को समान अवसर देने के बाद प्रदान की गई थीं। तथ्य यह है कि एक बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था में ऐसे तमाम क्षेत्र होते हैं जहां निजी क्षेत्र और सरकार को मिलकर काम करना होता है।

हम अदाणी के मामले पर विस्तार से बातचीत कर चुके हैं क्योंकि इन दिनों वह चर्चा में है। लेकिन ये सभी कारोबारी समूह अपना ज्यादातर कारोबार भारत में करते हैं और उन क्षेत्रों में करते हैं जहां सरकार का दखल है। उनका ज्यादातर राजस्व भी घरेलू है। हालांकि टाटा के सॉफ्टवेयर कारोबार जैसे कुछ अपवाद भी हैं।

इसे बेहतर ढंग से समझने के लिए हम भारत के कमजोर पूर्वी तट पर स्थित धामरा बंदरगाह का मामला ले सकते हैं। टाटा ने इसे अत्यंत विपरीत परिस्थितियों में तैयार किया। उसे पर्यावरण कार्यकर्ताओं के खास विरोध का सामना करना पड़ा क्योंकि संप्रग सरकार के कार्यकाल में उन्हें अधिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। तमाम सवाल उठे और मुकदमे भी हुए। आर क्षित वन भूमि के इस्तेमाल से लेकर ऑलिव रिडली कछुओं के घोंसले बरबाद होने तक का प्रश्न उठा।

संप्रग के कार्यकाल में उसे बहुत देर बाद मंजूरी मिली क्योंकि शीर्ष नेता इतने समझदार नहीं थे कि वे पूर्व में एक और सक्षम बंदरगाह की महत्ता समझ सकें। आखिरकार टाटा ने इसे अदाणी को बेच दिया, वह एक अलग किस्सा है। कई लोग मानते होंगे कि टाटा को इसे अदाणी समूह को बेचने के लिए विवश किया गया होगा लेकिन हमें विचार करने की जरूरत है कि क्या भारत का सबसे पुराना और प्रतिष्ठित कारोबारी घराना इतना कमजोर हो गया है कि मोदी सरकार में उसका कोई माई-बाप नहीं?

तीसरा बिंदु है इन अत्यधिक शक्तिशाली भारतीय निकायों वैश्विक ब्रांड स्थापित करने में नाकामी। हम ब्रांड्स को तीन श्रे णियों में बांट सकते हैं: देश, कंपनी और उत्पाद ब्रांड। पहली श्रेणी में कुछ भारतीय ब्रांड हैं: योग, आयुर्वेद और शायद अध्यात्म। इंजीनियरिंग और गणित की प्रतिभा, आईआईटी और आईआईएम आदि, जेनेरिक दवाओं समेत कुछ अन्य को भी सूची में शामिल किया जा सकता है।

कई शक्तिशाली भारतीय कंपनी ब्रांड हैं जिनकी पहचान दुनिया भर में है। कम से कम कारोबारी क्षेत्र में: टाटा, रिलायंस, वेदांत और कुछ कंपनियां तथा कुछ कंपनियां जो समूह के भीतर हैं मसलन टीसीएस। कुछ अन्य टेक कंपनियां भी हैं मसलन इन्फोसिस, विप्रो और एचसीएल आदि।

यद्यपि इनमें से किसी ने ऐसा प्रॉडक्ट ब्रांड नहीं बनाया जो दुनिया पर काबिज हो। भारत के पास ऐसी अपनी कार या दोपहिया नहीं हैं, अपना सॉफ्टवेयर या ऑपरेटिंग सिस्टम नहीं है, कोई परफ्यूम या पेय तक नहीं है। हमारे ज्यादातर जीआई टैग कृषि उत्पादों के हैं और हमारे पास ऐसा कोई ब्रांड नहीं जो दुनिया भर की दुकानों पर नजर आता हो।

कॉर्पोरेट जगत गारमेंट का ब्रांड बनाने में नाकाम रहा और हमारी फैक्टरियों में बनकर निर्यात होने वाले कपड़े अंतरराष्ट्रीय स्टोर चेन के लेबल तले बेचे जाते हैं। उस लिहाज से हमारे वस्त्र निर्माता आउटसोर्सिंग का काम भी कर रहे हैं। मोदी सरकार भी उत्पादन संबद्ध प्रोत्साहन तथा अन्य रियायतों के साथ काफी हद तक ऐसे ही काम का वादा कर रही है।

भारत निर्यात के लिए ढेर सारे मोबाइल फोन बना रहा है जो अच्छी बात है लेकिन उनमें से किसी पर भारतीय ब्रांड का नाम नहीं है। चीन और कोरिया ने आधा दर्जन से अधिक ब्रांड तैयार किए हैं जिनका दुनिया में दबदबा है। विनिर्माण पर मोदी सरकार का जोर बहुत अच्छा और जरूरी कदम है लेकिन यह भारतीय विनिर्माण को उसी आउटसोर्सिंग की दिशा में धकेल रहा है जिसमें सॉफ्टवेयर उद्योग है।

सांठगांठ निंदायोग्य है और यह अच्छी बात है कि अब सांठगांठ पर इतनी बहस हो रही है लेकिन हमारी ताकतवर, अमीर और सफल कंपनियों तथा सरकारी नीति की सबसे बड़ी नाकामी यह है कि हमारी आर्थिक वृद्धि ब्रांड से रहित है।

राष्ट्रीय सहारा

Date:20-03-23

मैत्री पाइपलाइन

संपादकीय

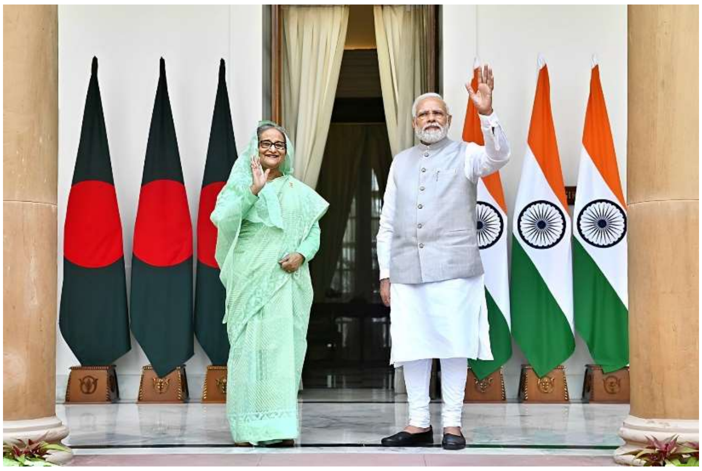

भारत-बांग्लादेश संबंधों में शनिवार को एक या अध्याय जुड़ गया जब प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और बांग्लादेश की उनकी समकक्ष शेख हसीना ने उत्तरी बांग्लादेश में डीजल की आपूर्ति करने के लिए पाइपलाइन परियोजना का उद्घाटन किया। दोनों देशों के बीच यह पहली सीमा पार ऊर्जा पाइपलाइन है। वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के जरिए उद्घाटित परियोजना पर 377 करोड़ रुपये की लागत आई है, जिसमें से 285 करोड़ रुपये बांग्लादेश में पाइपलाइन बिछाने पर खर्च हुए हैं। यह खर्च भारत ने अनुदान के रूप में बांग्लादेश को दिया है। 131.5 किलोमीटर लंबी पाइपलाइन से असम में नुमालीगढ़ से बांग्लादेश तक हर साल दस लाख मीट्रिक टन डीजल की आपूर्ति की जाएगी। भारत-बांग्लादेश फ्रेंडशिप पाइपलाइन की नींव सितम्बर, 2018 में रखी गई थी। यह पाइपलाइन बांग्लादेश के विकास को और गति देगी और दोनों देशों के बीच कनेक्टिविटी का भी उत्कृष्ट उदाहरण होगी। इस समय भारत से बांग्लादेश को डीजल आपूर्ति 512 किलोमीटर लंबे रेल मार्ग से की जाती है। जिससे परिवहन लागत बढ़ जाती है। इस परियोजना के क्रियान्वयन से इस खर्च से निजात मिलेगी। कार्बन उत्सर्जन भी कम होगा। बांग्लादेश के साथ भारत की रेल कनेक्टिविटी आजादी के बाद काफी समय तक ठप पड़ी रही। इससे दोनों देशों के बीच आवागमन और साज-सामान के वहन में परेशानी दरपेश थी। महसूस किया गया कि दोनों देशों के बीच 1965 से पहले के रेल संपर्क को बहाल किया जाए तो दोनों के बीच ऊर्जा कारोबार में काफी बढ़ोतरी हो सकती है। अभी भारत का बांग्लादेश के साथ पेट्रोलियम कारोबार एक अरब डॉलर से ज्यादा का है। भारत अभी बांग्लादेश को 1, 100 मेगावाट से ज्यादा बिजली आपूर्ति कर रहा है। कोरोना महामारी के दौरान रेल संपर्क बहाल होने से बांग्लादेश को बहुत फायदा हुआ और वह रेलमार्ग के जरिए भारत से ऑक्सीजन की आपूर्ति प्राप्त कर सका। बांग्लादेश अच्छे से जानता है कि भारत के साथ कनेक्टिविटी बढ़ना उसके हित में है। खासकर ऊर्जा जरूरतों के मद्देनजर तो वह बनिस्बत कम लागत पर अपनी

ऊर्जा जरूरतें पूरी कर सकता है। मैत्री सुपर थर्मल पावर प्लांट की दूसरी यूनिट को भी जल्द ही चालू किया जाएगा। बेशक, दोनों देशों के रेल और रोड कनेक्टिविटी बढ़ने से ऊर्जा सहयोग तेजी से बढ़ रहा है।

Live हिन्दुस्तान.com

Date:20-03-23

एक ब्रांड की वापसी

संपादकीय

यह अपने आप में शोध का विषय है कि कोई ब्रांड कैसे खड़ा होता है और कैसे वह पतन की ओर चला जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि शीतल पेय का कैंपा कोला ब्रांड लोग भूले नहीं हैं और बाजार के अध्ययन में यह बात सामने आई कि इस ब्रांड को फिर बाजार में लौटाया जा सकता है। रिलायंस कंपनी ने इसके लिए पहल की, जिससे बाजार और उद्यमियों में विचार-विमर्श का नया दौर शुरू हो गया है। कैंपा कोला की वापसी ने शीतल पेय बाजार में खलबली मचा दी है, कीमतें कम होना तय है। एक समय था, जब इसका स्लोगन ग्रेट इंडियन स्वाद हुआ करता था। यह ब्रांड 1970 के दशक में शीतल पेय बाजार में सबसे ज्यादा बिका करता था। धीरे-धीरे यह पतन की ओर बढ़ा और दिल्ली में इसके कार्यालय और बॉटलिंग प्लांट 2000-2001 में पूरी तरह से बंद हो गए। कुछेक बोतलों की आपूर्ति के साथ यह हरियाणा में थोड़ा बच रह गया था। अब रिलायंस कंपनी ने इसका जिम्मा उठाया है, जाहिर है, अब पेप्सी और कोका कोला जैसे ब्रांड को तगड़ी टक्कर मिलने वाली है। कैंपा कोला के आने से शीतल पेय बाजार बदलने वाला है।

प्योर ड्रिंक्स ग्रुप के पास जब यह ब्रांड था, तब इसका राज चलता था और अगर फिर यह ब्रांड चल निकले, तो कोई आश्चर्य नहीं। इस ब्रांड की शुरुआत 1949 में हुई थी और अब वापसी 2023 में हो रही है। ऐसे बहुत से ब्रांड हैं, जो लोगों की स्मृतियों में हैं। कई ब्रांड बंद हो गए, तो कुछ किसी तरह से अपना नाम घसीट रहे हैं। वास्तव में, उदारीकरण के बाद भारतीय ब्रांडों को जिस तरह से चुनौतियों का सामना करना पड़ा है, वह अलग से शोध का विषय रहा है। आज कहां हैं बिनाका टूथपेस्ट, डालडा वनस्पति, हमाम और मोती साबुन, गोल्ड स्पॉट पेय इत्यादि? एक शीतल पेय तो 1977 में जनता पार्टी सरकार के समर्थन से बाजार में उतारा गया था। नाम था 77 मतलब डबल सेवन, यह कोका कोला के देश से जाने के बाद उतारा गया था, मगर डबल सेवन ब्रांड इंदिरा गांधी सरकार के लौटते ही कमजोर पड़ गया। मतलब किसी ब्रांड के पीछे बाजार ही नहीं, तात्कालिक राजनीति की भी तगड़ी भूमिका होती है। बाद में साल 1991 में उदारीकरण की नीति के बाद 1993 में जब कोका कोला की देश में वापसी हुई, तब भारतीय बाजार में मानो भूचाल ही आ गया। भारतीय बाजार पर कब्जा करने के साथ ही बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने पुराने या कुछ जमे हुए ब्रांडों को खरीदना शुरू कर दिया। भारत में मुक्त बाजार व्यवस्था है, पर यहां विशुद्ध भारतीय ब्रांडों पर विशेष रूप से अध्ययन किया जाना चाहिए।

पुराने ब्रांडों को याद किया जा रहा है, तो एक समय टॉफी का सबसे प्रसिद्ध ब्रांड मॉर्टन हुआ करता था। आज बाजार में टॉफी और चॉकलेट के ढेरों ब्रांड हैं, पर एक समय मॉर्टन का जलवा था। अंग्रेजों के समय ही बिहार के मढ़ौरा में सी ऐंड ई मॉर्टन (इंडिया) लिमिटेड ने 1929 में अपने कारखाने में मॉर्टन टॉफी का उत्पादन शुरू किया था। उदारीकरण के दौर में ही 1997 में इस कारखाने पर ताला लग गया। मॉर्टन अब एक इतिहास है, उसकी वापसी की कोई चर्चा नहीं है। समय बदल गया, एक समय मढ़ौरा में ही चार कारखाने हुआ करते थे, 4,000 से ज्यादा लोगों को रोजगार मिला हुआ था, अब सन्नाटा है। यह तो एक मिसाल है। ऐसे बहुत से ब्रांड हैं, जिन्हें अगर लौटाया जाए, तो भारतीय उद्योग जगत के साथ ही देश की आत्मनिर्भरता को भी बल मिलेगा।